दैनिक जागरण
जीवन की दशा बदलनी है तो कर्म की दिशा बदलिए

सही समय पर उचित फैसला

केंद्र सरकार को करीब पौने दो लाख करोड़ रुपये हस्तांतरित करने के रिजर्व बैंक बोर्ड के फैसले को लेकर कांग्रेस और अन्य राजनीतिक दलों की ओर से जैसा शोर मचाया जा रहा है उससे ऐसा लगता है कि कोई अनर्थ होने जा रहा है। यह आश्चर्यजनक है कि कुछ अर्थशास्त्री भी रिजर्व बैंक के फैसले को सही संदर्भ में देखने से इन्कार कर रहे हैं। इससे इन्कार नहीं कि रिजर्व बैंक एक बड़ी धनराशि सरकार को हस्तांतरित करने जा रहा है, लेकिन ऐसा नहीं है कि यह काम पहली बार हो रहा है। रिजर्व बैंक की ओर से पहले भी ऐसा किया जाता रहा है। अंतर बस इतना है कि पहले उसकी ओर से सरकार को हस्तांतरित की जाने वाली राशि इतनी अधिक नहीं होती थी। इसकी अनदेखी नहीं की जानी चाहिए कि रिजर्व बैंक द्वारा सरकार को कितनी राशि दी जा सकती है, इसकी सिफारिश बकायदा एक समिति ने की है और उसके प्रमुख इसी बैंक के पूर्व गवर्नर बिमल कुमार जालान हैं। इसी के साथ यह भी ध्यान रखा जाए तो बेहतर कि रिजर्व बैंक ने जालान समिति की सिफारिशों को स्वीकार करने का फैसला इसलिए किया, क्योंकि उसने यह पाया कि उसकी वित्तीय स्थिति बेहतर है। जिन्हें भी रिजर्व बैंक का यह फैसला रास नहीं आ रहा है उन्हें इस पर गौर करना चाहिए कि भारत सरकार को जो धन मिलने जा रहा है वह देश का पैसा है। आखिर इसमें क्या हर्ज है कि देश का पैसा देश के काम आए? निःसंदेह ऐसा भी नहीं है कि रिजर्व बैंक ने अपना सारा खजाना खाली करने का फैसला किया हो।

चूंकि फिलहाल अर्थव्यवस्था सुस्ती के दौर से गुजर रही है और मंदी का अंदेशा उभर आया है इसलिए रिजर्व बैंक की ओर से वित्तीय रूप से सरकार के हाथ मजबूत करने की पहल को उपयुक्त समय पर उठाया गया कदम ही कहा जाएगा। यदि अर्थव्यवस्था की सुस्ती और गहराने के बाद रिजर्व बैंक की ओर से सरकार को 1,76,051 करोड़ रुपये हस्तांतरित करने का फैसला किया जाता तो शायद अनुकूल नतीजे हासिल करने में मुश्किल होती। रिजर्व बैंक के फैसले के बाद कारोबार जगत के साथ आम जनता के बीच तो एक अच्छा संदेश जाएगा ही, वैश्विक निवेशकों को भी इसका अहसास होगा कि भारत ने आर्थिक सुस्ती को दूर भगाने के लिए कमर कस ली है। रिजर्व बैंक से उम्मीद से अधिक राशि मिलने से केंद्र सरकार को केवल खर्च बढ़ाने में ही मदद नहीं मिलेगी, बल्कि चालू वित्त वर्ष के शेष समय में बुनियादी ढांचे से लेकर सामाजिक क्षेत्र तक में खर्च बढ़ाकर मांग को बल देने में सहायता मिलेगी।

सेहत पर सवाल

उत्तराखंड में स्वास्थ्य महकमे की सेहत नासाज है। तमाम कोशिशों के बाद भी यहां व्यवस्थाएं पटरी पर नहीं आ पा रही हैं। राज्य गठन के वक्त से इस तरह की स्थितियां बनी हुई हैं। उन्नीस साल बाद भी समस्या का स्थायी समाधान नहीं खोजा जा सका। अभी तक की सरकारों ने अपने-अपने नजरिये से नित नए फार्मूले लागू किए, पर समस्या जस की तस बनी हुई है। हालात इस कदर खराब हैं कि अधिकांश पर्वतीय जिलों में सरकारी अस्पताल रेफरल सेंटर बन कर रह गए हैं। बेस अस्पतालों की स्थिति भी कमोबेश यही है। सच तो यह कि स्वास्थ्य सेवाएं पटरी पर लाने के नाम पर अभी तक केवल प्रयोग ही हुए हैं। इच्छाशक्ति और प्रभावी नीति न होना इसकी वजह सामने आ रही है। ये सही है कि उत्तराखंड में डॉक्टर और पैरामेडिकल स्टाफ की कमी अन्य राज्यों की तुलना में ज्यादा है, लेकिन जो उपलब्ध भी हैं उनके इस्तेमाल की सही योजना विभाग के पास नहीं दिखती। पर्वतीय अंचलों में डॉक्टर कदम रखने को तैयार नहीं हैं, इसके उलट शहरी इलाकों के अस्पतालों में जुगाड़बाजी से तैनाती पाने की होड़ लगातार बढ़ रही है। कोई शक नहीं कि इस स्थिति के लिए सरकारें ज्यादा जिम्मेदार हैं, क्योंकि किसी भी सरकार ने कभी भी इस बात पर गंभीरता से विचार नहीं किया कि पर्वतीय इलाकों में किस प्रकार से स्वास्थ्य सेवाओं को बेहतर किया जा सकता है। ट्रांसफर-पोस्टिंग में राजनीतिक दखल और चहेतों को एडजस्ट करने की प्रवृत्ति ने इस समस्या को और गहरा किया है। सवाल यह कि क्यों नहीं राज्य की एक सम्यक स्वास्थ्य नीति तैयार कर ली जाती। इसमें यह स्पष्ट हो कि पर्वतीय क्षेत्र में एक नियत अवधि तक सेवा देने के बाद डॉक्टर और पैरामेडिकल स्टाफ शहरी में तैनाती पाने का स्वतः हकदार होंगे। कई मौकों पर सरकारें इस तरह की बातें कहती सुनाई दीं, मगर इसे कार्य व्यवहार में लाने से मुंह चुराती दिखीं। इसी का नतीजा है कि राज्य में स्वास्थ्य सेवाओं को पटरी पर लाना सबसे बड़ी चुनौती बन गया है। कभी स्टाफ की कमी तो कभी डॉक्टरों के पहाड़ चढ़ने के लिए तैयार न होना बताकर सरकार अपना बचाव कर रही है, पर सवाल अपनी जगह खड़ा है कि आखिर ऐसा कब तक चलेगा। अब कुछ अस्पतालों को पीपीपी मोड पर देने की बात कही जा रही है, लेकिन शायद सरकार इस बात को भूल रही है यह प्रयोग उसका असफल हो चुका है। पूर्व में जिन अस्पतालों में यह प्रयोग किया गया था, वहां स्थिति सुधरने के बजाय खराब हुई है, तो क्या गारंटी अब परिणाम आशातीत मिलेंगे। सरकार को ठोस कदम उठाने चाहिए।

बहुत खलेगा इस अरुण का अस्त होना

प्रशांत मिश्र

वाजपेयी के बाद जेटली भाजपा के संभवत : अकेले ऐसे नेता माने जा सकते हैं जिनके दोस्त हर दल में थे। विचारधारा से परे उनके बीच लंबी बातचीत हो सकती थी

रैना बीती जाए... आरडी बर्मन का यह गाना अरुण जेटली जी को बहुत प्रिय था। सुना है हाल के दिनों में वह कई बार इस गाने को सुनते रहे थे। यह सच है कि तीन-चार महीने पहले तक बीमारी को हराकर जीवन के मैदान में फिर से उतरने को लेकर विश्वस्त अरुण जी को हाल के दिनों में आभास होने लगा था कि अब जीवन की डोर छोटी हो रही है। और इसीलिए अपनों से, खास दोस्तों से मिलते तो भविष्य के लिए कुछ-कुछ संदेश जरूर देते थे। दोस्तों को यही बोलकर गए थे कि मित्र मंडली चलती रहनी चाहिए। जितना संभव हो एक दूसरे की मदद करते रहना चाहिए। एक दूसरे के साथ खड़े होना चाहिए। लेकिन अगर कोई यह समझ बैठे कि वह हार गए थे या भयभीत थे तो बिल्कुल गलत होगा। दरअसल जितना मैं समझ पाया वह न तो किसी भी परिस्थिति से डरने वाले थे और न ही धैर्य खोने वाले। वह तो डटकर मुकाबला करने वाले थे। छात्र राजनीति से लेकर केंद्र सरकार में मंत्री बनने तक उन्होंने कभी अधीरता नहीं दिखाई। जो जिम्मेदारी मिलती गई उसमें खुद को साबित करते गए। बीमारी के बाद मौत ने उन्हें जरूर हर किसी से ओझल कर दिया है, लेकिन जीवन और राजनीति को लेकर उनकी सोच और प्रासंगिकता हमेशा बरकरार रहेगी।

अरुण जी को जानने-पहचानने वालों की संख्या बहुत ज्यादा थी और इस नाते उनके हर पहलू पर काफी बातें होती रही हैं। मैं तो इतना कह सकता हूं कि एक इंसान के रूप में उनका जाना समाज के लिए बहुत बड़ी रिक्तता पैदा कर गया है। कहा जाता है कि अच्छे इंसान की पहचान इससे हो सकती है कि उनके घरेलू सहायक कितने लंबे वक्त से टिके हैं। सभी जानते हैं कि उनके घर का न तो कभी कोई सेवक बदला, और न ही दोस्त, बल्कि संख्या बढ़ती ही चली गई। उनका यही गुण उन्हें राजनीति में भी अलग खड़ा करता है। अटल बिहारी वाजपेयी के बाद वह भाजपा के संभवतः अकेले ऐसे नेता माने जा सकते हैं जिनके दोस्त हर दल में थे। विचारधारा से परे हटकर उनके बीच लंबी बातचीत हो सकती थी। एक दूसरे के हमराज बन सकते थे। बिहार इसका सबसे बड़ा उदाहरण है। सभी जानते हैं कि बिहार में भाजपा और जदयू के बीच जितना लंबा गठबंधन रहा है उतने ही दोनों दलों के बीच तनाव के पल भी रहे हैं। लेकिन मुख्यमंत्री नीतीश कुमार और अरुण जेटली के संबंधों में इस कारण कोई बाधा नहीं आई। मगर उतना ही ध्यान इसका भी रहा कि राजनीतिक विचारधारा और सांगठनिक कर्तव्य की राह में संबंध आड़े न आएं। यही कारण है कि जब प्रधानमंत्री के तौर पर नरेंद्र मोदी का नाम ऊपर रखने की बात आई तो नीतीश के साथ अच्छे संबंधों ने उन्हें नहीं जकड़ा। भाजपा और जदयू अलग-अलग हो गए तब भी संबंध नहीं बिगड़े। कर्तव्यपरायणता की भावना उनमें कूट-कूट कर भरी थी।

अवधेश राजपूत

मुझे याद आता है कि नोटबंदी के बाद मीडिया के एक मित्र ने एक सार्वजनिक कार्यक्रम में अरुण जी से बहुत तीखे सवाल किए थे। बाद में पत्रकार की पत्नी के अलावा भी कई साथियों ने जब कहा कि सवाल बहुत तीखे थे तो वह पत्रकार अरुण जी के पास पहुंचे। उनसे पूछा कि क्या उन्हें लगता है कि ऐसे सवाल नहीं पूछे जाने चाहिए थे तो उन्होंने तपाक से कहा-अरे भाई, तुम्हें यही पूछना चाहिए था। दोस्ती की जगह दूसरी है और काम की जगह दूसरी। यही उनकी बड़ी खूबी थी। उनकी दोस्ती सामने वाले को बांधती नहीं थी, बल्कि उन्मुक्त करती थी। उनका बड़ा राजनीतिक और सामाजिक कद भी कभी किसी को छोटा महसूस नहीं करने देता था, बल्कि ऊपर उठने को प्रेरित करता था।

दरअसल उनके आसपास हमेशा ऐसा माहौल होता था कि कभी भी आपसी मनभेद न पैदा हो सके। मुझे याद है कि भाजपा संगठन के एक बड़े नेता के बारे में एक खबर छपी थी जिसमें यह लिखा गया था कि वह अमेरिका में घूम रहे हैं। किसी कारणवश उस पर खूब चर्चा हुई थी। खबर लिखने वाले जेटली के भी मित्र थे और उक्त पदाधिकारी के भी। जाहिर तौर पदाधिकारी का शक जेटली के ऊपर गया था। उन्होंने तत्काल आमना-सामना कर यह स्पष्ट कर दिया था कि उनकी ओर से कोई जानकारी नहीं दी गई थी। मौजूदा दौर के नेताओं से उन्हें एक और बात जुदा करती थी और वह था धैर्य। बात 1999 की है। मीडिया के एक मित्र की शादी थी। तब जेटली सूचना प्रसारण विभाग में राज्यमंत्री बनाए गए थे। मैंने जब उनसे कहा कि वाजपेयी जी ने उन्हें क्षमता से कम दिया है तो वह कंधे पर धौल लगाते हुए बोले-सब ठीक है। इसमें कोई बात नहीं है और न ही मुझे आकांक्षा है। उनकी क्षमता को पहचानते हुए ही वाजपेयी जी ने बाद में उन्हें बड़े-बड़े मंत्रालय दिए थे। एक ऐसे इंसान का जाना समाज में रिक्तता पैदा कर गया है।

रही बात भाजपा की तो लंबे अरसे तक उनकी भरपाई नहीं हो पाएगी। उन्हें संकटमोचक के रूप में ही जाना जाता रहा है। टेबल पर गेम जीतना उन्हें अच्छी तरह आता था और यही कारण है कि गुजरात में लोकप्रिय और अजेय रहे नरेंद्र मोदी ने भी उन्हें ही लगातार गुजरात का प्रभारी बनाए रखना चाहा। उनकी आलोचना करने वाले यह कहते हैं कि वह खुद कभी नहीं जीत पाए। लेकिन पार्टी के अंदर इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता कि जीतने का मंत्र उनके पास था। वह अर्जुन नहीं बन पाए लेकिन द्रोणाचार्य के गुण थे। 2019 लोकसभा चुनाव अभियान में भी प्रचार-प्रसार की जिम्मेदारी उन्हीं के पास थी। नेतृत्व और निर्णय क्षमता को केंद्रित कर चुनाव लड़ने के प्रबल समर्थक रहे जेटली ने 2014 से प्रेसिडेंशियल फॉर्म ऑफ इलेक्शन यानी राष्ट्रपति शैली वाले चुनाव की बात शुरू कर दी थी। बीमारी के कारण वह शुरुआती कुछ दिनों के बाद कार्यालय आने में भी असमर्थ थे, लेकिन कर्मठता इतनी थी कि वह अस्पताल या घर बुलाकर भी प्रवक्ताओं को भाजपा का पक्ष रखने का मंत्र दिया करते थे। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी और भाजपा अध्यक्ष अमित शाह को भी उनकी समझ पर इतना भरोसा था कि जब 2014 में महाराष्ट्र में अकेले चुनाव लड़ने का फैसला लेना था तो शाह ने घोषणा करने से पहले जेटली से सलाह ली थी। उस वक्त भी जेटली अस्पताल में भर्ती थे।

संगठन बहुत बड़ा होता है, लेकिन उसे बड़ा बनाने में व्यक्तियों का हाथ होता है। आज भाजपा विश्व की सबसे बड़ी पार्टी है, दोबारा बहुमत के साथ सरकार में आने का रिकार्ड है तो इसका श्रेय प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी और भाजपा अध्यक्ष व गृहमंत्री अमित शाह को जाता है। लेकिन इससे पहले भाजपा को खासकर बुद्धिजीवियों के बीच स्वीकार्य बनाने वालों में एक नाम जेटली भी थे। उनकी कमी भाजपा को भी खलेगी और समाज में अच्छी बाते करने वाले, अच्छी सोच को बढ़ाने वाले लोगों को भी खलेगी।

(लेखक दैनिक जागरण के राजनीतिक संपादक हैं)

response@jagran.com

दोहरी रणनीति से गायब होगी मंदी

डॉ. भरत झुनझुनवाला

यदि छोटे उद्यमियों को संरक्षण देने के साथ ही विनिर्माण के बजाय सेवा क्षेत्र पर जोर दें तो मंदी को मात दी जा सकती है

देश के प्रमुख आर्थिक सलाहकार यानी सीईए कृष्णमूर्ति सुब्रमण्यम ने भारतीय उद्यमियों का आह्वान किया है कि वे निवेश बढ़ाएं। चूंकि निवेश ही आर्थिक विकास का अहम पैमाना है, लिहाजा हमें निवेश और खपत के संबंध को समझना होगा। यह कहानी अंडे और मुर्गी जैसी है। यदि हम मानें कि पहले निवेश होता है। जैसे किसी उद्यमी ने कपड़ा बनाने की फैक्ट्री में निवेश किया तो उस निवेश से कुछ श्रमिकों को वेतन मिलता है। उस वेतन से वे खपत करते हैं। उनके द्वारा खपत किए जाने से बाजार में तमाम वस्तुओं की मांग बढ़ती है। इस मांग की पूर्ति के लिए उद्यमी पुनः निवेश करते हैं। ऐसा मानें तो आर्थिक विकास का बुनियादी कारक निवेश है। यह हुआ कि अंडा पहले आता है। अब इसी चक्र को हम खपत से भी शुरू कर सकते हैं। जैसे यदि देश की जनता ने कपड़े की खपत बढ़ाई तो कपड़े के दाम बढ़े। कपड़े की मांग और दाम बढ़े तो उद्यमी ने कपड़े की फैक्ट्री में निवेश किया। निवेश किया तो उत्पादन बढ़ा और उत्पादन बढ़ा तो उसमें श्रमिकों को वेतन मिला जिससे पुनः खपत में वृद्धि हुई। यह हुआ कि मुर्गी पहले आती है।

स्पष्ट है कि यह एक गोल चक्र है जिसे हम किसी भी छोर से शुरू कर सकते हैं, लेकिन खपत और निवेश को साथ-साथ चलना होता है जैसे आपस में बंधी हुई दो गाड़ियां। मान लीजिए खपत अधिक हुई और निवेश कम हुआ। लोगों ने कपड़े ज्यादा खरीदे और उद्यमी ने कपड़े बनाने की फैक्ट्री कम लगाई। ऐसे में बाजार में कपड़े के दाम बढ़ेंगे जिसके कारण खपत कम हो जाएगी। निवेश के अभाव में खपत नहीं बढ़ सकती है। खपत की गाड़ी अकेले आगे नहीं जा सकती है, क्योंकि पीछे बंधी निवेश की गाड़ी रुकी हुई है। इसी प्रकार यदि हम मानकर चलें कि निवेश में वृद्धि हुई और खपत में कटौती हो गई तो निवेश में वृद्धि से उत्पादन बढ़ेगा। उत्पादन बढ़ेगा तो माल के दाम घटेंगे। माल के दाम घटेंगे तो निवेशक को घाटा होगा और पुनः निवेश बंद हो जाएगा। निवेश की गाड़ी भी अकेले आगे नहीं जा सकती है, क्योंकि पीछे बंधी खपत की गाड़ी रुकी हुई है। अतः खपत और निवेश को साथ-साथ चलना ही होता है।

खपत और निवेश के साथ-साथ चलने में भी एक विशेष अनुपात होता है। इसे इस तरह समझें कि यदि हम बैल से खेती करते हैं तो निवेश कम होता है और खपत ज्यादा होती है, क्योंकि बैल की देखरेख के लिए ज्यादा श्रमिक चाहिए होते हैं जबकि बैल का दाम तुलना में कम होता है। यदि हम ट्रैक्टर से खेती करें तो ट्रैक्टर में निवेश अधिक और श्रमिक द्वारा खपत कम होती है। इसलिए खपत का हिस्सा कम और निवेश का हिस्सा ज्यादा होता है। इस प्रकार खपत और निवेश का अनुपात तकनीकों से निर्धारित हो जाता है। इस अनुपात में दोनों को साथ-साथ चलना होता है। फिर भी खपत और निवेश में ज्यादा प्रभावी खपत ही दिखती है। जैसे फिलहाल बाजार में माल पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। निवेश हो चुका है और उत्पादन हो रहा है, लेकिन खपत न होने के कारण मंदी छाई हुई है। खपत के प्रभावी होने का प्रमाण धर्मस्थल इंस्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेंट डेवलपमेंट, मैसुरु के अध्ययन से मिलता है। इसके अनुसार देश के सकल घरेलू उत्पाद में जो परिवर्तन होते हैं उसके प्रमुख कारकों में 26 प्रतिशत हिस्सा खपत का है और चार प्रतिशत निवेश का है। यानी देश की आय में उतार-चढ़ाव खपत के कारण होता है।

सीईए सुब्रमण्यम के अनुसार उन देशों में विकास का कारक खपत होती है जहां पर आय 10,000 डॉलर प्रति व्यक्ति से अधिक है। यह बात अर्थशास्त्र के सिद्धांतों पर खरी नहीं उतरती है। अमीरों द्वारा यदि एक रुपये की आय होती है तो उसमें से केवल 10 पैसे की खपत की जाती है और 90 पैसा निवेश किया जाता है। इसकी तुलना में यदि गरीबों को एक रुपये की आय होती है तो उसमें 90 पैसे की खपत की जाती है और 10 पैसे का निवेश किया जाता है। अतः उन देशों में खपत ज्यादा बढ़ती है और विकास तेज होता है जहां गरीबों की आय में वृद्धि होती है। अन्य अर्थशास्त्रियों के आकलन से भी सुब्रमण्यम की बात मेल नहीं खाती है। नोबेल पुरस्कार से सम्मानित जोसेफ स्टिगलिट्स के अनुसार मौजूदा वैश्विक मंदी का मुख्य कारण असमानता है। अमीरों की आय अधिक है और गरीबों की कम। इस कारण बाजार में मांग सुस्त है। संभव है कि सुब्रमण्यम ने यह बात सिर्फ इसलिए कही हो कि भारतीय उद्यमी निवेश करने को उन्मुख हों।

नीति आयोग के पूर्व प्रमुख अरविंद पानगड़िया ने इस संदर्भ में कहा है कि आर्थिक विकास को वापस पटरी पर लाने के लिए उद्योगों को टैक्स आदि में छूट देने के स्थान पर आर्थिक सुधारों को लागू करना चाहिए। मैं इससे सहमत हूं कि उद्योगों को टैक्स आदि में रियायतें देने से बात नहीं बनेगी। यदि कार का दाम पांच लाख से घटकर चार लाख हो जाए तब भी जनता के पास उसे खरीदने की क्षमता नहीं है। इसीलिए उद्योगों को दी गई छूट प्रभावी नहीं होगी। बहरहाल पानगड़िया द्वारा आर्थिक सुधारों में गति के सुझाव में कुछ पेंच फंसे हुए हैं। यहां प्रश्न है कि कौन सा सुधार? अभी तक का अनुभव यह है कि आर्थिक सुधारों के कारण ही मंदी आई है। जीएसटी जैसा सुधार लागू करने के कारण छोटे उद्योग दबाव में आ गए। इस दबाव से उनमें रोजगार के अवसर कम सृजित हुए। श्रमिकों के वेतन में कटौती हुई और मंदी पैठ कर गई। इसलिए यदि हम जीएसटी जैसे सुधारों को और मुस्तैदी से लागू करेंगे तो मंदी बढ़ेगी, न कि घटेगी।

मंदी को तोड़ने के लिए दो कार्य करने होंगे। पहला यह कि छोटे उद्यमियों को संरक्षण देना होगा। छोटे उद्यमी रोजगार के अधिक अवसर सृजित करते हैं। उनके द्वारा किए उत्पादन में वेतन का हिस्सा अधिक होता है जिससे खपत बढ़ती है। खपत बढ़ने से खपत और निवेश का सुचक्र स्थापित हो जाता है। दूसरा हमें विदेशों को आपूर्ति करने के लिए विनिर्माण के बजाय सेवा क्षेत्र पर अधिक ध्यान देना होगा। सेवाओं का वैश्विक बाजार लगातार बढ़ रहा है। इसलिए हमें 'मेक इन इंडिया' के स्थान पर 'सर्व्ड फ्रॉम इंडिया' को अपनाना होगा। तभी हम रोजगार उपलब्ध करा सकेंगे। इससे खपत बढ़ेगी और निवेश भी होगा। इन दो तरीकों से हम मंदी को मात दे सकते हैं।

(लेखक वरिष्ठ अर्थशास्त्री एवं आइआइएम, बेंगलूर के पूर्व प्रोफेसर हैं)

response@jagran.com

ऊर्जा

ज्ञान की सार्थकता

लोगों को शिक्षा की प्रेरणा देने के लिए सरकारें अभियान चला रही हैं। इसके लिए हर स्तर पर तमाम प्रयास किए जा रहे हैं। यह मान लिया गया है कि शिक्षित समाज मानव सभ्यता के विकास का मानदंड तय करता है। आज शिक्षा की सफलता रोजगार पाने में है। बड़े से बड़े संस्थान बाकायदा आंकड़े जारी करते हैं कि उनके संस्थान के कितने छात्रों को रोजगार मिला। यह शिक्षा रोजगार तो दिला सकती है, किंतु ज्ञानवान भी बनाती है इसमें संदेह है।

ज्ञान का संबंध आत्मिक चेतना से है जो मनुष्य के चरित्र में गुणात्मक परिवर्तन लाती है। ज्ञान मनुष्य के मस्तिष्क को नहीं आत्मा को जगाता है जिससे मन में यह जानने की जिज्ञासा पैदा होती है कि मैं कौन हूं? मनुष्य जब तक स्वयं को नहीं जानेगा कि वह कौन है, उसके जीवन का उद्देश्य क्या है और इस उद्देश्य की प्राप्ति का मार्ग क्या है तब तक वह यह कैसे निश्चित करेगा कि उसे जीवन को किस मार्ग पर ले चलना है? अपने मूल की खोज करना ही पूरे ब्रह्मांड को जान लेना है। स्वयं को जान लेना अपने अंदर में बसने वाले परमात्मा को पा लेना है। परमात्मा यदि कण-कण में है तो मनुष्य के अंदर भी है। उसे पा लेना ही तो मनुष्य के जीवन का लक्ष्य है।

मानव समाज का विकास बड़े उद्योगों, आलीशान इमारतों, चौड़ी सड़कों, पुलों और भौतिकता की चकाचौंध में नहीं है। एक समय था कि रावण ने सोने की लंका बनाई थी। नगर सोने का था, किंतु उसमें रहने वालों के मन कलुषित और सत विहीन थे। इसीलिए उन्हें दैत्य कहा गया। सारे दैत्य भी मारे गए और सोने की लंका भी नष्ट हो गई थी। आज ज्ञान के अभाव में जैसा स्वरूप मानव समाज का बन रहा है उसमें हिंसा, घृणा और अनैतिकता का ही बोलबाला दिखता है। क्या हम एक और लंका दहन की ओर बढ़ रहे हैं। इससे बचना है तो ज्ञानवान मनुष्य तैयार करने होंगे। समाज को ज्ञान से जोड़ना होगा। शिक्षा का अपना महत्व है, किंतु ज्ञान के बिना वह अंततः निराश करने वाली है।

डॉ. सत्येंद्र पाल सिंह

कमजोर होता सामाजिक ताना-बाना

मंजूषा

परिवारों के टूटने की बढ़ती संख्या केवल एक आंकड़ा भर नहीं है, यह हमारे बिखरते सामाजिक ताने-बाने का आईना है

हाल में ही आई संयुक्त राष्ट्र की रिपोर्ट प्रोग्रेस ऑफ द वर्ल्ड्स वूमेन 2019-2020 : फैमिलीज इन ए चेंजिंग वर्ल्ड के मुताबिक भारत में परिवारों के टूटने के मामले बढ़ रहे हैं। बीते दो दशकों के दौरान तलाक के मामले दोगुने हो गए हैं। अभी भारत में लगभग 14 लाख लोग तलाकशुदा हैं। भारत जैसे सुदृढ़ सामाजिक-पारिवारिक ढांचे वाले देश में टूटते परिवारों के बढ़ते आंकड़े वाकई विचारणीय हैं। दरअसल परिवारों में आज भी पुरुष वर्चस्व कायम है, जबकि आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर और उच्च शिक्षित युवतियां परिवार से जुड़े फैसलों में भागीदारी चाहती हैं। अधिकतर परिवारों में महिलाएं खुलकर अपनी सोच जाहिर नहीं कर सकतीं। नतीजतन रोजमर्रा की जिंदगी में या तो तनाव और टकराव बढ़ रहा है या संवादहीनता की स्थितियां आ रही हैं। दोनों ही परिस्थितियों में पति-पत्नी के बीच मतभेद बढ़ते हैं जो अक्सर तलाक का कारण बनते हैं। बीते दो दशकों के दौरान महिलाओं के अधिकार बढ़े हैं, पर परिवारों में मानवाधिकार उल्लंघन और लैंगिक असमानता के मामले जस के तस हैं। ऐसे हालातों में महिलाओं की आर्थिक और सामाजिक सुरक्षा की भी चिंतनीय स्थितियां बनी हुई हैं।

बीते कुछ वर्षों में हमारे यहां परिवार और समाज का पूरा ढांचा ही बदल गया है। निःसंदेह इन बरसों में आए सभी बदलाव सकारात्मक नहीं हैं। जीवनशैली से लेकर विचार और व्यवहार तक जिंदगी में बहुत कुछ ऐसा जुड़ गया है, जो घर-परिवार में बिखराव ला रहा है। उन्मुक्त जीवनशैली, संवाद की कमी, असंवेदशील सोच, असहिष्णुता और विवाहेत्तर संबंध जैसे कई कारण वैवाहिक रिश्तों के टूटने का कारण बन रहे हैं। साथ ही सहनशीलता और सकारात्मक सोच में कमी के चलते छोटी-छोटी वजहों से भी शादीशुदा जीवन बिखर रहा है। यहां तक कि स्मार्ट उपकरणों ने भी रिश्तों में सेंध लगाई है। उम्रभर के साथ वाले रिश्ते में भी लोग एक-दूसरे के लिए समय निकलने के बजाय आभासी दुनिया में वक्त बिता रहे हैं।

विवाह विच्छेद के अधिकतर मामले बड़े शहरों से ही सामने आ रहे हैं। पिछले पांच साल में मुंबई जैसे शहरों में शादीशुदा जीवन में अलगाव के मामले 200 प्रतिशत तक बढ़े हैं। युवा और कामकाजी जोड़ों की बड़ी जनसंख्या वाले शहर बेंगलुरु में तलाक के बढ़ते मामलों के कारण 2013 में तीन नए फैमिली कोर्ट खोलने पड़े थे। ये आंकड़े बताते हैं कि उच्च शिक्षित और आर्थिक रूप से सक्षम पति-पत्नी एक दूसरे की बात न सुनना जरूरी समझते हैं और न ही समझना, जबकि यह एक कटु सच है कि सह-अस्तित्व और एक दूसरे से तालमेल बैठना के भाव के बिना कोई परिवार नहीं चल सकता। रीत रहे भरोसे के इस दौर में वैवाहिक रिश्तों में संदेह और गलतफहमियां भी बहुत जल्दी जगह बना लेती हैं। यही वजह है कि मामूली मनमुटाव भी अब तलाक का कारण बन रहा है। कारण कई हैं, लेकिन वैवाहिक रिश्तों के न निभ पाने की प्रमुख वजह हमारे सामाजिक-पारिवारिक ढांचे का बिखराव ही है, जो हर हाल में चिंतनीय है।

(लेखिका शिक्षिका हैं)

मेलबाक्स

इतिहास से सबक लेने की जरूरत

ताशकंद और शिमला समझौते के सबक शीर्षक से युक्त अपने लेख में सुरेंद्र किशोर ने भारत-पाकिस्तान के साथ हुए 1965 और 1971 के युद्ध के बाद होने वाले द्विपक्षीय समझौते के हश्र से सबक लेने की जो बात की है, वह वर्तमान परिप्रेक्ष्य में एकदम सटीक है। क्योंकि मोदी सरकार ने अनुच्छेद-370 और 35-ए पर निर्णायक कदम उठाते हुए, जिस तरह से जम्मू-कश्मीर के शासन की बागडोर अपने हाथ में ले ली है, उससे पाकिस्तान बौखला गया है। भारत के इस कठोर फैसले से पाकिस्तान की उम्मीदों पर पानी फिर गया है। अब पीओके के साथ कश्मीर को मिलाने की उसकी साजिश नाकामयाब हो गई है। ऐसे में पाकिस्तान की किसी भी गैरजिम्मेदाराना हरकत के प्रति भारत को न केवल सचेत रहने की जरूरत है, अपितु सीमा पार से होने वाली गोलीबारी और घुसपैठ का करारा जवाब देकर पाकिस्तान को यह संदेश भी देना है कि अब भारत उसकी किसी भी बेजा हरकत को पहले की तरह बर्दाश्त नहीं करेगा। वस्तुतः अभी तक भारत ने अपने पड़ोसी पाकिस्तान के प्रति जैसी उदारता बरती है उसके बदले में उसे प्रतिघात ही मिले हैं। ताशकंद और शिमला समझौते में भारत ने उदारतापूर्वक अपने द्वारा जीती गई पाकिस्तानी जमीन और उसके आत्मसमर्पित बंदी सैनिकों को सकुशल वापस कर दिया था। लेकिन पाकिस्तान ने इस समझौते के विपरीत आतंकवाद के जरिये भारत के साथ छद्म-युद्ध छेड़ दिया। बावजूद इसके पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने लाहौर बस सेवा शुरू करते हुए स्वयं पाकिस्तान जाकर मैत्री का संदेश दिया था। लेकिन बेशर्म पाकिस्तान ने बदले में कारगिल युद्ध का आघात दिया। भला ऐसे दगाबाज पाकिस्तान पर भारत कैसे भरोसा करे? यद्यपि मोदी शासित भारत बहुत ही सतर्क निगाहों से पाकिस्तान की छोटी से छोटी हरकत को भी देख रहा है। इसके बाद भी भारत को इतिहास से सबक लेते हुए अविश्वसनीय और गैरजिम्मेदार पाकिस्तान के प्रति विशेष सतर्कता बरतने की जरूरत है।

डॉ. वीपी पाण्डेय

दोषियों को मिले सख्त सजा

शासन-प्रशासन की गलतियों के कारण ही आज सभी स्कूलों में दिए जा रहे मिड-डे मील की गुणवत्ता में कमी देखी जा रही है। यह केवल शामली, अमरोहा और मिर्जापुर के ही विद्यालयों की बात नहीं है, कमोबेश पूरे देश में यही हाल है। घूसखोरी की बढ़ती घटनाओं पर लगाम न लगने के कारण मिड-डे मील में बच्चों के भोजन के साथ लापरवाही बरती जा रही है, जो बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण है। मिर्जापुर में एक विद्यालय में बच्चों को नमक रोटी खाने के लिए देना शर्मिंदगी की बात है। एक तरफ हम मंगलयान पर सवार हो मंगल ग्रह की यात्रा कर रहे हैं, वहीं दूसरी तरफ बच्चे नमक रोटी खाने को मजबूर हैं। नमक रोटी खाने के लिए एक बच्चे का बाध्य होना यह दर्शाता है कि हमारे देश में भ्रष्टाचार कितनी तेजी से पांव पसार रहा है। सरकार कुछ भी करने की कोशिश करती है तो अधिकारी-कर्मचारी मिलकर इसको पूरा नहीं होने देते। बीच में ही उन पैसों का बंदरबांट हो जाता है। इसलिए मिड-डे मील की गुणवत्ता को गिराने में जो भी दोषी हो उसको सख्त से सख्त सजा मिलनी चाहिए।।

नीरज कुमार पाठक, नोएडा

ट्रंप को मोदी का संदेश

27 अगस्त को प्रकाशित संपादकीय ट्रंप से खरी बात पढ़ा। फ्रांस के बायरिट्ज शहर में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप के सामने खरी-खरी बात कह दी कि कश्मीर भारत का आंतरिक मामला है और भारत पाकिस्तान के मसले द्विपक्षीय हैं, इसमें हम किसी तीसरे राष्ट्र को तकलीफ नहीं देना चाहते। इस खरी टिप्पणी से डोनाल्ड ट्रंप को भी ये संदेश पहुंच गया होगा कि आज के भारत को झुकाया नहीं जा सकता। इससे पहले चीन को भी ये कड़ा संदेश दे दिया गया है कि वह भारत के अंदरुनी मामले में हस्तक्षेप न करे। कश्मीर भारत का आंतरिक मामला है। अनुच्छेद 370 हटाने से पाकिस्तान से और चीन की लगती सीमा में कोई बदलाव नहीं हुआ है। भारत ने सभी जरूरी मंचों पर भी यही आवाज उठाया कि वह कश्मीर पर मध्यस्थ का राग इसलिए सुनने को तैयार नहीं है, क्योंकि ये उसका आंतरिक मामला है। पाकिस्तान से भी अगर किसी मामले पर बात होगी तो वह पाक अधिकृत कश्मीर पर ही होगी।

चंद्र प्रकाश शर्मा, रानी बाग, दिल्ली

इस स्तंभ में किसी भी विषय पर राय व्यक्त करने अथवा दैनिक जागरण के राष्ट्रीय संस्करण पर प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए पाठकगण सादर आमंत्रित है